# सज़ा

वृषाली वैद्य

किशोरावस्था में बच्चे अत्यन्त संवेदनशील होते हैं। उनके बहुआयामी विकास के लिए बहुत ज़रूरी है कि इस उम्र में घर पर और शाला में उन्हें इसके अनुकूल स्वतंत्र माहौल मिले, जिसमें उन्हें अपनी बात व तर्क सामने रखने, मुद्दों पर चर्चा करने, आदि का पर्याप्त मौका हो। क्योंकि अक्सर उस दौर के अनुभव व्यक्ति के जीवन व चरित्र पर एक अमिट छाप छोड़ देते हैं। इस अनुभव में ज़रूर उस छाप ने लेखिका को सवाल खड़े करने का माद्दा व ताकत दी है, परन्तु उस सबके लिए इतने अपराध बोध व शर्मिंदगी से गुज़रना ज़रूरी है क्या?

बात लगभग 1983 की है। तब मैं लड़कियों के स्कूल में कक्षा छठवीं में पढ़ती थी। उन दिनों मैं और मेरी सहेलियां छुट्टी के बाद नाटक की रिहर्सल के लिए जाते थे। उस नाटक में हम चार सहेलियां रोल कर रही थीं। हम चारों का एक अच्छा समूह बन गया था।

एक बार आधी छुट्टी के पहले वाले पीरियड में शिक्षक के न आने की वजह से कक्षा में फ्री पीरियड का माहौल था। इस फ्री पीरियड में क्या किया जाए, हम चारों सहेलियां सोच रही थीं। सोचते हुए हम लोगों के दिमाग में एक ज़ोरदार आइडिया आया – खुद की शादी के लिए निमंत्रण पत्र तैयार किया जाए। इस निमंत्रण पत्र में वधु के नाम के रूप में तो हम चारों सहेलियों के नाम लिखे जाने हैं यह तय था, लेकिन चार दूल्हों के नाम कहां से लाए जाएं? उस समय दूल्हों के नाम भी याद नहीं आ रहे थे। अब क्या किया जाए, यह सोचते हुए हमने अपनी एक सहेली के तीन चचेरे भाइयों के नाम दूल्हों के रूप में लिख डाले। इसी तरह चौथा दूल्हा भी

ढूंढ लिया गया। इतना सब करते हुए हमारे निमंत्रण पत्र का खाका मोटे तौर पर तैयार हो गया था। आमतौर पर निमंत्रण पत्र में जिन शब्दों का इस्तेमाल होता है उन्हें लिखते हुए हमें काफी मज़ा आ रहा था। 'ईश्वर की अनुकंपा से' की जगह क्या लिखा जाए? यानी किसकी अनुकंपा से, या निमंत्रण पत्र की भूमिका किस तरह लिखी जाए – ईश्वर की अनुकंपा से हमारी आठवीं कन्या का..... यहां 'आठवीं कन्या' लिखें या कुछ और.....? ऐसी कई बातों पर हमने काफी माथा-पच्ची की। निमंत्रण पत्र के नीचे यह स्पष्टः लिखा गया कि उपहार लाना न भूलें। साथ में एक फुटनोट भी दिया गया कि हमारी प्राथमिकता है 'नकदी-रोकड़ा'।

निमंत्रण पत्र में एक-एक शब्द लिखते हुए हमारा हंस-हंसकर बुरा हाल हो रहा था। आधी छुट्टी में खाना खाते समय भी निमंत्रण पत्र की बातों को याद करके हम लोग काफी देर तक हंसते रहे। खाना खाने के बाद हम लोगों ने अपनी-अपनी शादी के निमंत्रण पत्र फाड़कर फेंक दिए और इस बात को भूल भी गए।

चार-पांच दिनों के बाद हम चारों सहेलियों को मुख्य अध्यापिका ने अपने कमरे में बुलाया। हम चारों वहां पहुंची तो उन्होंने बिना किसी लाग-लपेट के सवाल दागा, "इन दिनों स्कूल में तुम लोगों का क्या लफड़ा चल रहा है?" यह सवाल हमारे लिए काफी अन-अपेक्षित था। हमें तो समझ में भी

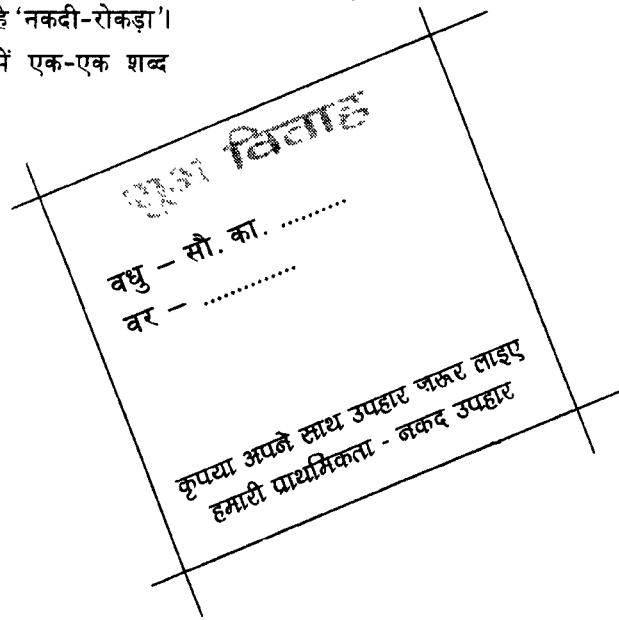

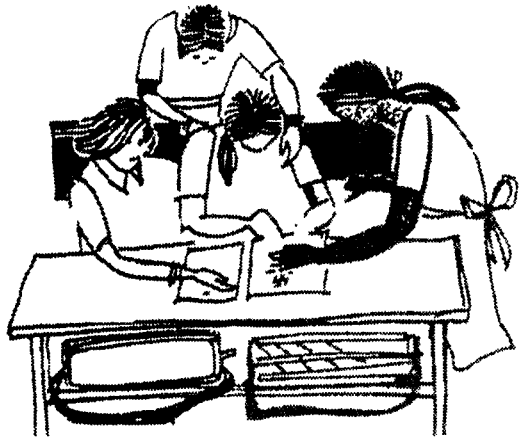

नहीं आ रहा था कि इस सवाल का क्या मतलब है! हम प्रश्नवाचक भाव से एक-दूसरे का मुंह ताकने लगीं। तभी हमारे निमंत्रण पत्र के चंद टुकड़े सामने रख दिए गए। तब कहीं जाकर हमें मैडम के सवाल का मतलब समझ में आया। लेकिन हमारी गलती क्या थी यह अभी भी हमारी समझ में नहीं आ रहा था। "तुम लोगों को अपनी गलती की सज़ा ज़रूर भुगतनी पड़ेगी", मैडम ने फरमान सुनाया और वहां से चल दीं।

'ये चारों लड़कियां कक्षा में एक साथ बैठती हैं इसलिए इनके दिमाग में हमेशा 'खुराफात' पकती रहती है। ऐसा कुछ करना चाहिए कि ये चारों कक्षा में एक साथ न बैठ पाएं' शायद ऐसा ही कुछ सोचकर हमारे लिए सज़ा मुकर्रर की गई कि हमारे सेक्शन अलग-अलग कर दिए जाएं। चारों सेक्शन का नाम लिखकर हमारे सामने पर्चियां रखी गईं। हम चारों ने भारी अपमान महसूस करते हुए एक-एक पर्ची उठाई। मुझे 'क' सेक्शन मिता और मेरी सहेलियों को क्रमशः 'ख', 'ग' और 'घ' सेक्शन मिले।

इस नए सेक्शन में नई लड़कियों के साथ किस तरह तालमेल बैठाया जाए, यह समझ में नहीं आता था। हम चारों को अपने पुराने सेक्शन की, सहेलियों की याद आती थी। पढ़ाई में मन नहीं लगता था। नए सेक्शन में बैठते हुए हमेशा ऐसा लगता था कि स्कूल की हर लड़की, शिक्षिका, कर्मचारी हमारी ओर इशारा करके कह रहा है कि देखो यही वो लड़कियां

जिनके सेक्शन बदले गए हैं। कभी-कभी तो कक्षा में बैठे-बैठे ही रुलाई फूट पड़ती थी। स्कूल के बरामदे में से गुज़रते हुए हम नज़रें भी नहीं उठा पाती थीं। पूरे वक्त अपमान महसूस होता था।

हम चारों सहेलियां जब भी मिलतीं तो बस यही चर्चा होती कि हमसे ऐसी क्या भारी गलती हुई है कि हमें इतनी कड़ी सज़ा दी गई है? शादी का निमंत्रण तैयार करने में काफी मज़ा आया था और उसे तैयार करते हुए हमने किसी को परेशान भी नहीं किया था। सज़ा सुनाने से पहले कम-से-कम हमसे एक बार पूछा तो होता कि हमने निमंत्रण पत्र क्यों तैयार किए थे। लेकिन हमसे तो किसी ने भी नहीं पूछा, हमारा पक्ष जानने की कोशिश ही नहीं हुई।

शिक्षक-शिक्षिका जो हमसे उम्र में काफी बड़े थे, उन्होंने निमंत्रण पत्र को लेकर जो हमारे दिलो-दिमाग में नहीं था, उसे भी अपने नज़रिए से समझ लिया था। उनके इस नज़रिए से हमारा यह खेल गुनाह दिखाई देता था। शादी के निमंत्रण पत्र को बनाते हुए मिला आनंद, मज़ा आदि उन शिक्षकों को दिखाई नहीं दिए तो इसमें हमारा क्या कसूर था। 'हमें उन लड़कों से शादियां करनी हैं, उन से अभी से कोई चक्कर-वक्कर चल रहा है.....' वगैरह बातें उन सब बड़े लोगों की खोपड़ियों में घूम रही थीं, अब ऐसे में हम छोटे क्या करें? बहुत कर तो यही सबक मिल रहा था कि आप जो भी करना चाहते हो उसे करो, लेकिन किसी भी तरह के सबूत के साथ पकड़े मत जाओ। यदि पकड़े गए तो सज़ा मिलना तय है। इस कठोर व असंवेदनशील सज़ा से यकीनी तौर पर हमने यही सबक लिया था।

***

आज उन दिनों को यादकर मैं सोचती हूं कि ऐसी स्थिति में सज़ा क्यों दी जानी चाहिए और सज़ा देने से कौन-से लक्ष्य साधे जाते हैं? आज महसूस होता है कि सज़ा पाने वाले को कुछ बातें तो स्पष्ट होनी चाहिए जिससे खुद की गलती समझ में आ जाए – अगर सचमुच में कोई गलती की हो। ऐसी हालत में यह भी ज़रूरी है कि पता चले कि आपने आखिर गलती की कहां है ताकि आप उस गलती की ज़िम्मेवारी स्वीकार कर पाएं। सिर्फ उस गलती की ही नहीं बल्कि उस गलती की वजह से जो परिणाम सामने आएंगे, उन परिणामों के लिए भी खुद की ज़िम्मेवारी को स्वीकारना होगा। गलती की वजह से जो नुकसान हुआ है उस नुकसान को पूरा करना होगा। और साथ ही दोबारा गलती न होने देने की ईमानदार कोशिश करनी

होगी। और सबसे महत्वपूर्ण बात है कि ऊपर गिनाई बातें कसूरवार को अगर न बताई जाएं तो उसके स्वभाव में जीवन भर के लिए कड़वाहट भरे बदलाव आ सकते हैं।

हम चार सहेलियों को जो सज़ा दी गई उससे कौन-से लक्ष्यों की पूर्ति हो गई थी? क्या हमें अपनी गलती का अहसास हुआ? हमारे हिसाब से तो हमने कोई गलती नहीं की थी। यह बात हम तब भी मानते थे और आज भी मानते हैं। जब हम खुद को गलत नहीं मानते तो गलती की ज़िम्मेवारी लेने का सवाल ही नहीं उठता। और यदि नुकसान की बात करें तो नुकसान तो हमारा ही हुआ है। इतनी शर्मिंदगी, शर्मसार होना, अपराध-बोध में जीना....., इतना सब तो हमारे साथ ही हुआ। अब हम किसके नुकसान की भरपाई करेंगे? और रही बात इस घटना की वजह से अपने बर्ताव में बदलाव की, तो मुझमें ऐसा बदलाव आया कि वह मेरे स्वभाव का हिस्सा ही बन गया। मैं हर स्थापित विचार के खिलाफ कुछ अलग तरह से सोचने लगी। उसके बाद तो बड़ों से, स्थापित लोगों से जहां-जहां भी सहमत नहीं होती, अपना विरोध दर्ज कर देती थी। यह बागी प्रवृत्ति हमेशा के लिए मेरे स्वभाव का हिस्सा बन गई और आज भी है।

---

**वृषाली वैद्य:** पुणे में रहती हैं। शिक्षा के विविध मुद्दों में रुचि है।
**अनुवाद: माधव केलकर।**
*'पालक नीति' पत्रिका के सितंबर 2003 अंक से साभार।*
पालक नीति पत्रिका पुणे से मराठी भाषा में प्रकाशित होती है। इसमें शिक्षा एवं सामाजिक मुद्दों पर लेख होते हैं।